द्वितीय पुरुषार्थ : अर्थ
धन के प्रति हमारा दृष्टिकोण

देवर्षि कलानाथ शास्त्री

(राष्ट्रपति सम्मानित), प्रधान सम्पादक ''भारती''संस्कृत मासिक
पीठाचार्य, भाषामीमांसा एवं शास्त्रशोध पीठ - विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान, जयपुर
पूर्व अध्यक्ष - राजस्थान संस्कृत अकादमी
आधुनिक संस्कृत पीठ - जगद्गुरु रामानन्दाचार्य राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय
पूर्व निदेशक - संस्कृत शिक्षा एवं भाषा विभाग, राजस्थान सरकार
सदस्य - संस्कृत आयोग, भारत सरकार

धर्म, अर्थ एवं काम इन तीनों के त्रिवर्ग में भी और धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष इन चारों के चतुर्वर्ग में भी अर्थ की गणना दूसरे स्थान पर की गयी है। अर्थ केवल धन नहीं है, चाहे समृद्ध वर्ग में दीपावली की रात्रि को गणेश, लक्ष्मी और कुबेर के पूजन के साथ-साथ सिक्कों और नोटों की गड्डियों की पूजा कर यह स्पष्ट आभास दिया जाने लगा हो कि हम अर्थ का अर्थ धन से लगाते हैं। दीपोत्सव धनलक्ष्मी के पूजन का पर्व है। वैसे धनलक्ष्मी, धान्यलक्ष्मी, सौभाग्य लक्ष्मी, गजलक्ष्मी आदि विभिन्न रूपों में लक्ष्मी की अवधारणा केवल सिक्कों तक वैभव को सीमित नहीं होने देती पर हम हैं कि सिक्कों की खनखनाहट को ही लक्ष्मी के पायलों की आहट मानने लगे हैं। शोध विद्वानों ने बार-बार यह स्पष्ट किया है, कि वेदकाल में श्री या लक्ष्मी को केवल धन की देवी माना जाता हो सो बात नहीं है, वह रूप तो उत्तर वैदिक काल की देन है। जिस श्रीसूक्त (जिसमें लक्ष्मी के आवाहन के सोलह मंत्र हैं)को आज वैभव का ताबीज मानकर वैदिक लोग धनार्थियों में बाँटते रहते हैं, वह किस वेद में है. कोई नहीं जानता। कभी इसे ऋग्वेद परिशिष्ट में शामिल बताया जाता है, कभी अथर्ववेद परिशिष्ट में। इसे कब किसने बनाया और किस वेद में जोड़ दिया यह भी कोई नहीं जानता। यही हाल श्रीयंत्र का है जिसके पीछे धनार्थी दीवाने हैं। वह त्रिपुरसुन्दरी का है लक्ष्मी का है ही नहीं। हम कई बार लिख चुके हैं कि वैसे भी भारत में धन का महत्त्व इतना कभी नहीं रहा कि उसकी अलग से पूजा की जाये। क्या भारत के प्राचीन इतिहास के एक भी धनपति या सेठ का नाम आपको ज्ञात है, जिसे कोई सम्मान मिला हो, जबकि तपोवनो में रहने वाले निःस्पृह ऋषि-मुनियों के नाम सहस्त्राब्दियों से अमर है? इसका कारण यही है कि हमारे यहाँ केवल धन सामाजिक मूल्यांकन का मापदंड कभी नहीं रहा, जैसा कि आज है। ज्ञान, शौर्य, त्याग आदि ही उच्चतर मूल्य माने जाते रहे हैं।

धन की महिमा : हमारे यहाँ धन के प्रति क्या अभिगम रहा है? समृद्धि और धनसंग्रह को किस दृष्टिकोण से देखा गया है? क्या धन को नितान्त तुच्छ, असार और माया मात्र मान कर हेय समझा गया और दरिद्रता को महिमामंडित कर हम सपनों के महलों में विचरते रहे? इस पर शोधात्मक विचार बहुत दिलचस्प होगा। यह निष्कर्ष तो नितान्त गलत होगा, कि हमने धन या समृद्धि को कोई महत्त्व नहीं दिया। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पुरुषार्थों में अर्थ अथवा भौतिक समृद्धि का उतना ही महत्त्व है, जितना धर्म या मोक्ष का। इनमें धर्म समाज को धारण करने वाली उस व्यवस्था का नाम है, जिसके बिना न कोई देश चल सकता है, न सृष्टि। जो नियम सारे समाज के लिए आवश्यक हैं उनके ज्ञान का अनुसरण पहला पुरुषार्थ था, मानव का पहला साध्य था, पहला मूल्य था। अर्थ से तात्पर्य केवल धन का नहीं है, धन तो उसका साधन है। अर्थ है जीवन के स्वस्थ उपभोग और **'भूमा'**, समाज, परिवार, स्वजनों और मित्रों के साथ सुखपूर्वक रहने के लिए आवश्यक समृद्धि, भूमि, मकान, धन-धान्य आदि। धन का अर्थ सिक्कों के चलन के बाद 'मुद्रा' ही हो गया वह बात अलग है, किन्तु उससे पूर्व समृद्धि के लिए वांछित ये सभी वस्तुएँ जिनमें पशु, दैनिक उपयोग की वस्तुएँ आदि भी आती थीं 'अर्थ' पुरुषार्थ के अन्तर्गत मानव की काम्य वस्तु थीं। इनमें धन, सोना, चाँदी, रत्न, गहने सिक्के आदि भी गिन लें। वेदों में द्रविण, रै या रयि शब्दों से बहुधा धन को अभिहित किया गया है और देवताओं से द्रविण का वरदान मांगा गया है। 'द्रविणोदा द्रविणमस्तुर' आदि मंत्र इस बात के प्रतीक हैं कि धन की कामना सदा से की जाती रही है। घर में धन, समृद्धि और वैभव रहे इसे 'रायस्पोष' की संज्ञा दी गयी है। विवाह के समय दम्पति द्वारा जिन सात नियामतों की चाह की जाती थी, उनमें तीसरे नम्बर पर रायस्पोष गिनाया जाता था। दम्पति सप्तपदी के तीसरे पद पर कामना करते थे 'त्रीणि रायस्पोषाय विष्णुस्त्वान्वेतु।'

गुरुकुल की शिक्षा पूरी कर जीवनसंघर्ष में उतरने वाले स्नातक को गुरु अपने दीक्षान्त भाषण में जो स्पष्ट अनुदेश देता था 'भूत्यै न प्रमदितव्यम्' (तैत्तिरीय उपनिषद्) धन और समृद्धि के संग्रह में कभी लापरवाही न बरतना इससे बड़ा क्या महत्त्व होगा धन का? उपनिषदों में स्पष्ट किया गया है, कि जो लोग केवल सांसारिक समृद्धि की अंधी दौड़ में लगे हैं, वे तो अंधे कुए में पड़े ही हैं, किन्तु जो लोग संसार से निरपेक्ष होकर केवल परम सत्य के पीछे पागल हैं वे उनसे भी गहरे अँधेरे में हैं। (ईशावास्योपनिषद्)। यह बेबाक उक्ति बड़े नायाब ढंग से वेदों के समग्रवादी चिन्तन को स्पष्ट करती है। दोनों के बीच सन्तुलन हमारा ध्येय रहा है, धर्म से अविरुद्ध अर्थसंचय ही काम्य रहा है, काला धन कभी महिमा का आधार नहीं बना, यह महाभारत में तुलाधार और जाजलि के संवाद में प्रतिपादित है। दूसरे शब्दों में गांधीजी की तरह, साधनों की पवित्रता पर भी हमारी मूल्यांकनपरक दृष्टि रहती थी। ऋग्वेद में जिस काव्यात्मक शैली में धन की फितरत बता कर यह सिद्ध किया गया है, कि धन हमारा सर्वदा काम्य रहा है, वह अप्रतिम है। विवेक केवल

इतना-सा किया जाना है, कि धन ही साध्य नहीं है, वह साधन है। यही हमारे अभिगम का मूलमंत्र है।

पृणीयादिनाधमानाय तव्यान्-द्राघीयांसमनुपश्येत पन्थाम् । तं हि वर्तन्ते रथ्येव चक्राण्यन्यमन्यमुपतिष्ठन्त रायः।

(ऋ 10/117/5) 'यदि ईश्वर ने तुम्हें खुशहाली दी है तो उसे बाँटो, जिसे दरकार है उसे दो। तब तुम्हें मिलेगी वह विशाल दृष्टि जो तुम्हारा मार्ग विशाल बनायेगी। धन की तो फितरत ही यह है, कि यह जगह बदलता रहता है, रथ के पहिये की तरह ऊपर-नीचे होता रहता है, एक जगह टिकता नहीं। आज तुम्हारे पास है, कल और कहीं होगा।'

इस प्रकार की अभ्युक्तियाँ वेदों से लेकर आधुनिकतम लौकिक साहित्य तक में आपको मिलेंगी। इससे यह रहस्य भी समझ में आ जायेगा, कि धन-संग्रह भी काम्य था हमारा, किन्तु समाज के लिए, देवताओं के लिए, जरूरतमंदों के लिए, दान के लिए, वितरण के लिए। यह दृष्टिकोण धर्म का भी है, साहित्य का भी।

यह क्या कम आश्चर्यजनक है, कि जहाँ अन्य धर्मों में धनसंग्रह की प्रवृत्ति की जम कर निन्दा की गयी है वहाँ हमारे यहाँ प्राचीन आचार ग्रन्थों में विभूति की प्रशंसा और दरिद्रता की निन्दा की गयी है। बाइबिल की प्रसिद्ध उक्ति 'लव ऑफ मनी इज द रुट ऑफ आल ईविल' (न्यू टेस्टामेंट, टिमोथी 6/10) धन की प्रीति को सारी बुराइयों की जड़ बताती है। अंग्रेजी की वह उक्ति तो और भी चमत्कृत करने वाली है जो कहती है- 'यदि तुम्हें यह देखना है कि ईश्वर के मानस में धन की महत्ता कितनी है, तो बस उन्हें देख लो जिन्हें उसने भरपूर धन दिया है।' अर्थात् यदि ईश्वर मूर्खों, अपराधियों और ऐबदारों को ही सेठ बनाता है तो समझ लो कि धन को वह कितनी गन्दी चीज समझता है। इसके ठीक विपरीत महाभारत में महर्षि वेदव्यास स्वयं युधिष्ठिर के मुँह से स्पष्ट कहलवाते हैं

धनमाहुः परं धर्म धने सर्वं प्रतिष्ठितम् । जीवन्ति धनिनो लोके मृता ये त्वधना नराः ।

(उद्योग पर्व 72/23) 'धन से ही धर्म भी सम्भव है, धन से क्या कुछ नहीं होता? जीवन तो इस लोक में धनवानों का ही है, निर्धन तो मरे के समान है।' इसका प्रमाण है स्वयं 'निधन' शब्द जो मृत्यु का पर्याय हो गया है। उनका कल निधन हो गया। यह उक्ति तो सर्वत्र उद्धृत की ही जाती है-'अन्तरं नैव पश्यामि दरिद्रस्य मृतस्य च।' दरिद्र ओर मुर्दे में क्या फर्क है? 'पुरुषस्याधनं वधः' (उद्योग पर्व) अर्थात् किसी को जीते जी मारना हो तो उसका धन छीन लो। शायद यह दण्ड दिया भी जाता रहा हो।

दरिद्रता की निन्दा का यह आशय कदापि नहीं है, कि धनहीन से घृणा की जाए। इसके विपरीत निर्धनों को दिया दान ही पुण्यकार्य माना गया। कितने अनूठे ढंग से संस्कृत का एक श्लोक यह बात कहता है, कि जिस प्रकार स्वस्थ व्यक्ति को दवा देते रहना निरर्थक होता है, उसी प्रकार जिनके पास पहले से ही धन है, ऐसे व्यक्तियों को (चाहे वे

रिश्तेदार हों या विद्वान्) दान देना निरर्थक है, निर्धनों को ही दान दो-दरिद्रान् भर कौन्तेय।' संस्कृत के कालजयी कवियों ने धनहीनता का जो चित्र खींचा है, उसमें वह मनस्तात्त्विक विश्लेषण भी निहित है। जिसके कारण दरिद्रता को अभिशाप माना गया। यह सूक्ति सुविदित है कि घनघोर वन में हिंसक पशुओं के बीच रह कर मर जाना बेहतर है बजाय धनहीन होकर बन्धुजनों के बीच रहने के। 'न बन्धुमध्ये धनहीनजीवितम्।

दरिद्रता से उपजी कुंठा का जो चित्र कालजयी नाटककार भास ने 'दरिद्रचारुदत्त' नाटक में खींचा है और महाकवि शूद्रक ने अपनी अमर रचना 'मृच्छकटिक' में हर तरह से काबिल होते हुए भी अपने नायक चारुदत्त को निर्धन बताते हुए जो चित्र खींचा है वह देखने लायक है। दरिद्रता से इस कारण हम दूर रहना चाहते हैं कि उसकी वजह से मन में जो कुंठाएँ पनप जाती हैं, सब गुण होते हुए भी आत्मविश्वास का अभाव जड़ जमा लेता है, वह जीवन में सफल होने नहीं देता। फिर सारी विपदाएँ उसे क्यों नहीं घेर लेंगी? ऐसे व्यक्ति को बन्धुबान्धव भी छोड़ देते हैं, मित्रगण भी। और तो और, उसकी बुद्धि भी उसे छोड़ जाती है, तभी तो 'अहो निधनता सर्वापदामास्पदम्'-चारुदत्त कहता है। दरिद्र व्यक्ति किस प्रकार कुण्ठित हो जाता है, कृपण हो जाता है इसका बड़ा मार्मिक चित्र कालिदास ने एक फिकरे में यह कहते हुए खींच दिया है-'रिक्तः सर्वो भवति हि लघुः, पूर्णता गौरवाय।' जो रीता होगा वह हल्का भी होगा ही, जो भरा पूरा होगा वही भारी-भरकम हो सकता है। इन शब्दों में श्लेष के चमत्कार से यह भी कह दिया गया है कि रीता व्यक्ति मानसिकता से पूँजी भी हो जाएगा, उदारमना तो तभी होगा जब भरा-पूरा हो।

इन सबका यह अर्थ नहीं है, कि हमारे यहाँ धन की लिप्सा में निन्यानवे के फेर में पड़े रहने को ही परम पुरुषार्थ माना गया हो। इसके विपरीत समाज में यह धारणा बद्धमूल रही है, कि धन के साथ यदि मद और अभिमान आ गया तो उससे अधिक गर्हित और कोई अपराध नहीं। धन की यह प्रवृत्ति धर्म ने भी स्पष्ट की और साहित्य ने भी, कि उसके साथ व्यक्ति में मद अवश्य आएगा। 'निर्धनो लभते वित्तं तृणवन्मन्यते जगत्।' ज्यों ही आपके पास धन आया, आप सारी दुनियाँ को तिनका समझने लगेंगे। किन्तु धन का अन्त क्या होगा? इसका बड़ा मर्मस्पर्शी चित्र कवियों ने खींचा है। आपने विपुल धन संचित कर लिया। अब आप जीवनभर चोरों से, राजपुरुषों से (आयकर विभाग से), आग लगने से और ठगों की शातिर नजरों से डरते रहिये। फिर भी क्या चैन से जीवन बसर कर सकेंगे? नहीं। उस जीवन को तो आप से वे उत्तराधिकारी जल्दी ही छीन लेंगे, जिन्हें आपके मरने के बाद वह सम्पत्ति मिलने वाली है। 'दुर्वृत्तास्तनया नयन्ति निधनं धिग्-धिग् धनं तद् बहु।' ऐसे धन को लाख-लाख धिक्कार।

इस प्रकार धन का महत्त्व पूरी तरह स्वीकार करते हुए भी भारतीय संस्कृति का अभिगम धन और धनसंचय के प्रति पूरी तरह संतुलित और व्यावहारिक है। वह क्या है यह हम पहले ही स्पष्ट कर चुके हैं। फिर दोहरा दें कि हमने धन

को सदा साधन माना है, साध्य नहीं। वही चरम प्राप्तव्य नहीं है, बल्कि विद्या, यश और धर्म इन तीन लक्ष्यों की प्राप्ति का साधन है। यदि वह अवैध साधनों से संचित धन है तो समाज की घृणा का पात्र होगा, आज की तरह काले धन वाले भी उसी तरह स्पृहणीय और मानवीय बने रहते हों, यह स्थिति कभी नहीं रही थी। वह धन अपयश का हेतु भी बनता था। सोने की लंका का अन्त आग की लपटों में ही लिखा होता था। धन साध्य नहीं है, साधन है, इस अभिगम को नीतिशतक के अमर कवि भर्तृहरि ने जिन शब्दों में अभिलिखित किया है, वे कालजयी हो गये हैंः-

'दानं भोगो नाशस्तिस्त्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य । यो न ददाति न भुक्ते, तस्य तृतीया गतिर्भवति।'

धन कभी भी धन होने के कारण संचित नहीं किया जाता। उसकी तीन ही गतियाँ नियति ने तय कर रखी हैं। दान, भोग और नाश। या तो आप वेतन या मजदूरी या दान के द्वारा उसका समाज में वितरण कर दें अथवा अपने हितार्थ उपभोग कर लें। ये उसकी प्रथम दो नियतियां हैं। यदि ये दोनों आपने नहीं किये तो उसकी तीसरी नियति होगी ही वह है नाश। कितने नायाब ढंग से धन के सदुपयोग की सीख दे दी है भर्तृहरि ने। यही है हमारा धन के प्रति दृष्टिकोण।